बुनियादी रूपाकार का खोजी

राहुल बारपुते

मेरे लिए यह बताना संभव नहीं है कि अपनी बाल्यावस्था में गुरुजी (अर्थात् ख्यातनाम चित्रकार विष्णु दिनकर चिंचालकर) आलोट के अपने घर की दीवारों पर खड़िया से अथवा बाहर की धूल में अपनी अँगुलियों से कोई आकृतियाँ (अथवा विकृतियाँ) बनाया करते थे या नहीं। संभव इसलिए नहीं है कि जब हमारी पहली मुलाकात हुई थी तब गुरुजी की आयु थी इकतीस वर्ष। सितंबर की पाँच तारीख को वे पचहत्तर वर्ष पूरे कर छिहत्तरवें वर्ष में प्रवेश करेंगे। इन चवालीस वर्षों में कभी तो वे अपने बचपन का जिक्र करते। पर वैसा मौका आया ही नहीं। जिस मंजिल पर हम मिले थे, बस उसी से अगला प्रवास शुरू हो गया। उनके अतीत को लेकर न मैंने कोई प्रश्न ही किए, और न ही उनका स्वभाव है कि अपने बारे में खुद होकर कुछ बोलें। ऐसा नहीं है कि वे मुखर नहीं हैं। हैं। पर, अवसर हो या न हो, स्वयं को आगे ठेलना उनके सुसंस्कृत स्वभाव के सर्वथा विपरीत है। आलोट में जन्मे, देवास में पले-बढ़े और अन्ततः इंदौर आकर टिके, चित्रकार विष्णु दिनकर चिंचालकर (यानी गुरुजी चिंचालकर) इंदौर आने के पहले अनेक पापड़ बेल चुके थे। लेकिन उन पापड़ों का जिक्र यदि कभी उनकी बातचीत में आता ही है तो केवल प्रसंगवश, और सो भी अक्सर ही अत्यंत संक्षिप्त। इसीलिए बहुत कम लोग जानते हैं कि श्री वी.डी. चिंचालकर ने कितनी प्रतिस्पर्धाओं में एवं चित्र प्रदर्शनियों में कितने पुरस्कार अर्जित किए और किन कठिनाइयों को झेलते हुए वे अपना कला-प्रवास निरंतर जारी रख सके। अब, यदि कोई उनसे पूछे भी तो शायद उन्हें ही याद न होगा कि उन्होंने कितने पुरस्कार जीते। यदि बीच के कुछ वर्ष छोड़ दें, कि जब उन्होंने इंदौर के स्कूल ऑफ आर्ट में मुलाजिमत की थी, तो मेरी जानकारी के अनुसार मध्यप्रदेश भर में ऐसा कोई चित्रकार शायद ही होगा कि जिसने मात्र अपनी तूलिका के सहारे जीविकोपार्जन किया होगा। बेशक, गुरुजी के कुछ मित्र उन्हें (यानी गुरुजी को) सहायता देते रहे हैं, बल्कि देते रहे थे।

मेरे एक मित्र ने एक दिन कहा, "भाई, तुम्हारे गुरुजी चित्रकार तो क्या, एक बाजीगर भी हैं!" मैं कुछ हैरान हुआ और मैंने पूछा कि "यह तुम किस आधार पर कह रहे हो?" तो उसने बड़े मार्के का उत्तर दिया, "एक फटी बनियाइन से ईसा मसीह को साकार कर देना, या एक पुरानी लकड़ी की कुर्सी की पीठ को लेकर भगवान रामकृष्ण परमहंस का अत्यधिक प्रभावी आभास पैदा कर देना, इसे अथवा विभिन्न अक्षरों से अलग-अलग पशुओं को साकार कर देने की प्रक्रिया को आप क्या कहेंगे?" सतही तौर पर उनकी बात सही थी! पर वे नहीं जानते थे कि इस विशिष्ट बाजीगरी के पीछे कितना अधिक विचार मंथन था और साथ ही साथ अपने माध्यम पर कितना अधिक प्रभुत्व था उनका। इस प्रभुत्व के विषय में एक प्रसंग का उल्लेख करने की इजाजत चाहूँगा।

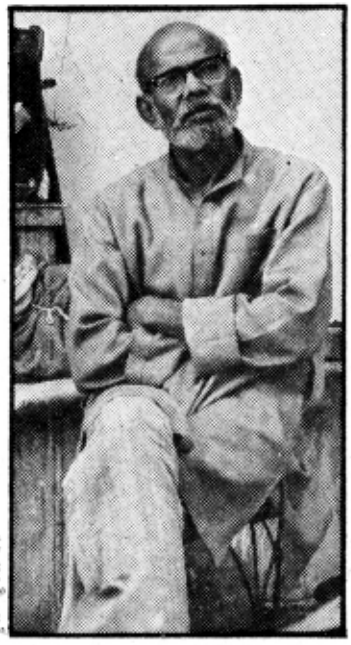

तुषार पुणतांबेकर

...अपने कबाड़खाने में

सन् १९४९। प्रस्थान : ओंकारेश्वर। समय तपती दुपहर। हम तीन जने नर्मदा किनारे बैठे थे-गुरुजी, स्वर्गीय वणकर और मैं। गुरुजी तन्मयतापूर्वक सामने वाले द्वीप पर स्थित महल और उसके पार्श्व के टीले तथा उसके नीचे छलछलाती नर्मदा को कागज पर समेट रहे थे। चित्रांकन लगभग पूरा हो गया था। तभी हमारे सहृदय मेजबान डॉ. ठकार हमें खोजते हुए आ पहुँचे और बोले, "अजी चलिए भी! देखिए कितना समय हो गया है। चलकर पहले खाना खा लीजिए। फिर मैं आपको राजमहल का एक फोटोग्राफ दूँगा, जो कुछ दिन पहले, लगभग इसी समय, खींचा गया था।" जब डॉ. साहब ने फोटोग्राफ दिया और उसे गुरुजी के चित्रांकन से मिलाया गया तो हम सब दंग रह गए। दोनों हूबहू, एक समान थे। कोई औसत चित्रकार होता तो ऐसी अद्‌भुत निपुणता से संतुष्ट हो जाता। लेकिन गुरुजी तो औसत से बहुत ऊँचे हैं। वे मात्र ऐसे प्रभुत्व से संतुष्ट नहीं थे। जो दिखाई देता है उसे धारण करने वाले रूपाकार की खोज थी उन्हें। ऐसा रूपाकार कि जिसमें सामने वाले का निचोड़ हो। इस प्रबल भावना से प्रेरित हो उन्होंने स्वयं के कृतित्व की एक झलक प्रेषित करने वाली एक अनूठी प्रदर्शनी रचाई थी- "इन क्वेस्ट ऑफ फॉर्म" (मतलब, रूपाकार की खोज में)। प्रदर्शनी में चित्र नहीं टँगे थे। रोजमर्रा के काम आने वाली चीजों के ऐसे हिस्से रचे गए थे कि जिन्हें औसत व्यक्ति अनुपयोगी ही नहीं, बल्कि कबाड़ा समझता है। लेकिन वे ऐसे रचे गए थे कि बिल्कुल भिन्न बातों का आभास देते थे। मसलन, साइकिल की एक पुरानी सीट और हैंडिल मिलकर हिरन का सिर नजर आते थे! यह चमत्कार था गुरुजी की रूपाकार की समझ का। इस पैनी खोज का एक परिष्कृत उदाहरण है गुरुजी द्वारा किए गए वे रेखांकन जिनमें कुमार गंधर्व गाना गाते दिखते हैं। इन रेखांकनों में कुमारजी का जो जीवन्त सादृश्य है वह देखने और महसूस करने की चीज है, बयान करने की नहीं।

विगत चवालीस वर्षों के गुरुजी के सत्संग ने मेरा भावजीवन बहुत समृद्ध तो किया ही है, मेरे वैचारिक क्षितिज को विस्तार भी दिया है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ और ठेठ तक रहूँगा। ■